समुदाय व संरक्षण

समुदय आधारित जैवविविधता संरक्षण तथा आजीविका सुरक्षा

कल्पवृक्ष

अंक १, नं. ३, जनवरी २००८

विषयवस्तु

२ ..... संपादकीय

३.....विधान व नीति
-अध्वंसनीय (इनवायोलेट) का विध्वंस

७.....उदाहरणात्मक अध्ययन
-सोलिगा समुदाय एवं बिलिगिरि रंगास्वामी मन्दिर वन्यजीव अभ्यारण्य

१० .....भारत के राज्यों से समाचार

अरुणाचल प्रदेश
-पांगचेन घाटी के संरक्षण में मोनपा समुदाय का सहयोग
-अपतानी समुदाय की परंपराओं को पुनर्जीवन
-पाके बाघ आरक्षित क्षेत्र की पहल
असम
-दीपौर बील
कर्नाटक
-कोक्करे बेल्लूर
-स्लैंडर लोरिस को मिला घर
-ग्रामीण महिला ओकुट्टा
केरल
-कोल जलक्षेत्र व अलूर गांव
उड़ीसा
-रूगुड़ीपल्ली के अतिथि
-पाकिड़ी पहाड़ियों में मोरों के लिए पानी
-सूखा संभावित क्षेत्र में काले हिरण (ब्लैकबक) का संरक्षण
-उड़ीसा में माहसीर संरक्षण
-डोंगरिया कोंढ और उनका नियम राजा

१६ .....अंतर्राष्ट्रीय समाचार
-केन्या का पोकोमो समुदाय

१६.....नए अंग्रेज़ी प्रकाशन व सी.डी.
-फौरेस्ट्स अलाईव!
-डीप इकौनोमी

संपादकीय

संरक्षण व मानव अधिकारों के क्षेत्र में कानून के दायरे के अंतर्गत, कई रिक्त स्थान भरे जा रहे हैं, लंबे समय से प्रतीक्षित मान्यताएं दी जा रही हैं, उन पर सवाल उठाए जा रहे हैं और उनकी परिभाषाएं बदली जा रही हैं।

नए साल के साथ-साथ अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पारंपरिक आदिवासी (अधिकारों को मान्यता) अधिनियम २००६ लागू हो गया। इसी के साथ, वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, २००६ के अंतर्गत लगभग सभी बाघ आरक्षित क्षेत्रों (टाइगर रिज़र्व) को अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्र (क्रिटिकल टाईगर हैबिटैट/कोर क्षेत्र) में तब्दील कर दिया गया । जल्दबाज़ी में किये गये इस बदलाव के पीछे यह समझ थी कि अनुसूचित जनजाति एवं अन्य पारंपरिक आदिवासी (अधिकारों को मान्यता) अधिनियम २००६ के लागू होने के बाद लोगों को बाघ संरक्षण क्षेत्रों से विस्थापित करने के लिए बहुत लंबी प्रक्रिया अपनानी पड़ती थी, जो इस तब्दीली से ज़रूरी नहीं होगा। लेकिन यह सोच गलत है, क्योंकि ऊपर लिखे गए दोनों अधिनियमों के अंतर्गत बाघ या अन्य वन्यजीव संरक्षण के हित में अनुसूचित जनजातियों या अन्य पारंपरिक आदिवासियों के विस्थापन के लिए अब न्यायपूर्वक व सहभागी प्रक्रिया चलाना ज़रूरी हो गया है।

सामुदायिक संरक्षित क्षेत्र, संरक्षित क्षेत्रों की एक और श्रेणी है, जो किसी व्यक्ति की निजि या समुदाय की सामूहिक भूमि पर उनकी अनुमति प्राप्त कर लागू की जा सकती है। क्योंकि तृणमूल स्तर पर अलग-अलग प्रकार की स्थितियां हो सकती हैं, इस श्रेणी के विषय में अलग-अलग लोगों की अलग-अलग प्रतिक्रिया है। जहाँ केरल की अलूर ग्राम पंचायत ने सामुदायिक संरक्षित क्षेत्र घोषित किए जाने के लिए आवेदन किया है, वहीं कर्णाटक के कोक्करे बेल्लूर नामक प्रसिद्ध व लंबे समय से संरक्षणरत गांव ने वन विभाग के द्वारा इस गांव को सामुदायिक संरक्षित क्षेत्र घोषित करने की कोशिश का विरोध किया है।

समय के साथ-साथ, यह सब अधिनियम व उनमें दिये गये प्रावधान स्पष्ट होते जा रहे हैं। आखिरकार ये संरक्षण व सामाजिक तुल्यता दोनों को बढ़ावा देने में

सक्षम और सफल हो पाएंगे या नहीं, यह कई वास्तविकताओं पर निर्भर करेगा। उसमें से प्रमुख है कि सभी साझेदार वनों, वन्यजीवों व पारंपरिक आदिवासियों की भलाई के लिए समान रूप से इच्छुक हों और अपनी सहभागिता पूरी तरह निभाएं। स्थिति में बहुत तेज़ी से बदलाव आ रहा है और ज़रूरी है कि जो लोग आदिवासियों के अधिकारों व संरक्षण के बीच गहरे रिश्ते को समझते हैं वे इन प्रावधानों को दिशा दें, जिससे कि संरक्षण व आदिवासियों दोनों के हित में कार्य किया जा सके।

विधान व नीति

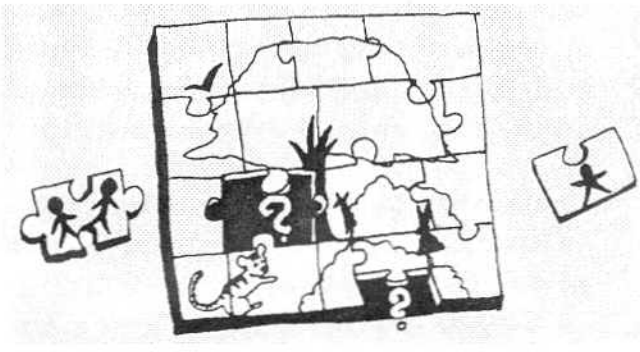

अध्वंसनीय (इनवायोलेट) का विध्वंस

अध्वंसनीय शब्द का क्या मतलब है? शब्दकोश के अनुसार इसका मतलब है 'जिसे नष्ट न किया जा सके या हानि न पहुंचाई जा सके'। और 'विध्वंस' से तात्पर्य है - 'भंग, भ्रष्ट या हानि पहुंचाना'। पर कहीं भी यह नहीं बताया गया कि अध्वंसनीय का मतलब 'मानव-उपयोग रहित' है।

शब्दकोश की परिभाषा से चलें तो वन्यजीव अधिनियम २००६ के अंतर्गत, बाघों के लिए अध्वंसनीय क्षेत्र (अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्र/कोर क्षेत्र/क्रिटिकल टाइगर हैबिटैट) का संदर्भ उन क्षेत्रों से है, जिनका किसी भी प्रकार से दुरुपयोग न किया जा सके, या जिनको हानि न पहुंचाई जा सके। लेकिन यह मान लेना गलत है - कि इन क्षेत्रों में अनुसूचित जनजाति व अन्य पारंपरिक आदिवासियों की उपस्थिति के कारण अनिवार्यतः उस क्षेत्र को हानि पहुंचेगी। और किसी भी तर्क से यह स्थापित नहीं किया जा सकता है कि ऐसे क्षेत्रों को अध्वंसनीय रखने के लिए पीढ़ियों से यहां रह रहे अनुसूचित जनजाति व अन्य पारंपरिक आदिवासियों, जिनका इन क्षेत्रों के साथ लंबा रिश्ता रहा है - उनको वहां से विस्थापित करना हर स्थिति में ज़रूरी है।

इसके अलावा यह इन क्षेत्र में रहने वाले आदिवासियों के साथ सरासर अन्याय होगा। राज्य ने आखिरकार यह माना कि इन आदिवासियों के साथ ऐसा अन्याय होता आया है और इस ऐतिहासिक अन्याय को सुधारने के लिए अनुसूचित जनजाति व अन्य पारंपरिक आदिवासी (अधिकारों को मान्यता) अधिनियम २००६ पारित किया गया। वन्यजीव (संरक्षण) संशोधित अधिनियम २००६ की नई धाराओं 38V(4) और 38V(5) में भी इस अन्याय को सुधारने की कोशिश दिखाई देती है। लेकिन क्या वास्तव में इस अधिनियम की नई धाराओं से झलकती हुई भली मंशा अपना उद्देश्य पूरा कर पाएंगी? या इन आदिवासियों के साथ सदियों से चला आ रहा अन्याय, जिसके दुष्प्रभाव बाघ व अन्य वन्यजीव संरक्षण पर भी पड़ते हैं, अभी भी कायम रहेगा?

38V(4)(i) स्थापित करता है कि सभी अति महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्रों को बाघ के संरक्षण की दृष्टि से अध्वंसनीय रखा जाएगा। लेकिन उसी वाक्य में यह भी कहा गया है कि इससे अनुसूचित जनजातियों या ऐसे अन्य आदिवासियों के अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इन क्षेत्रों का अध्वंसनीय होना आदिवासियों के अधिकारों में हस्तक्षेप करने से जुड़ा नहीं है।

38V(4)(ii) में स्पष्टतया लिखा गया है कि बफर क्षेत्र (कोर क्षेत्र के आसपास के क्षेत्र जो बाघ आरक्षण के लिऐ महत्वपूर्ण हैं) में सह-अस्तित्व या आपसी तालमेल से रहने की प्रक्रियाओं को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। दिलचस्पी की बात यह है कि, कहीं भी यह नहीं लिखा गया है कि महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्र (कोर क्षेत्र) में ऐसा करने की मनाही है। (अधिनियम के उपयुक्त उप-खण्डों के लिए कोष्ठ १ देखें)

38V(5) में वे सभी निर्देश दिए गए हैं, जिन्हें यदि आदिवासियों को विस्थापित करना पड़े या उनके अधिकारों पर दुष्प्रभाव पड़ रहे हों, तो पालन करना होगा। इन प्रवाधानों में रियायत केवल उस दशा में दी जा सकती है जब आदिवासी स्वेच्छा से आपस में तय की गई शर्तों के

आधार पर विस्थापन के लिए तैयार हों। (अधिनियम के उपयुक्त उप-खण्डों के लिए कोष्ठ २ देखें)

38V(5)(i) में लिखा है कि किसी भी प्रकार के अधिकारों के हनन या विस्थापन से पहले - अनुसूचित जनजातियों व अन्य पारंपरिक आदिवासियों के अधिकारों की बन्दोबस्ती होनी चाहिए। जब तक यह न हो तब तक राज्य सरकार कोई भी ऐसे कदम नहीं उठा सकती जिससे अधिकारों का हनन या विस्थापन हो सकता है।

38V(5)(ii) में लिखा है कि राज्य सरकार से संबंधित एजेंसियों को यह स्थापित करना होगा कि पारंपरिक रूप से रह रहे लोगों की गतिविधियों या उनकी मौजूदगी के कारण बाघ व उसके आवास क्षेत्र को खतरा है व ऐसी क्षति पहुंच रही है जिसकी आपूर्ति नहीं की जा सकती। इसके लिए क्षेत्र के अनुसूचित जनजातियों व पारंपरिक आदिवासियों की स्वीकृति आवश्यक है। अतः इस चरण में निम्नलिखित कोई भी स्थिति पैदा हो सकती है:

क) अनुसूचित जनजाति व अन्य पारंपरिक आदिवासी स्वीकृति न दें।

ख) वे स्वीकृति दे दें, पर राज्य सरकार की संबंधित एजेंसी संभावित खतरे और क्षति पहुंचाने वाले लक्षण साबित न कर सके।

ग) अनुसूचित जनजाति व अन्य पारंपरिक आदिवासियों की स्वीकृति मिल जाए और राज्य सरकार की संबंधित एजेंसी यह भी साबित कर सके कि आदिवासियों की गतिविधियों या मौजूदगी से बाघ व उसके आवास क्षेत्र को ऐसी क्षति पहुंचेगी जिसकी आपूर्ति नहीं की जा सकती।

केवल आखिरी स्थिति (ग) में ही अगले कदम तक जाने की संभावना है, जिसके बाद विस्थापन या अधिकारों पर बंदिश हो सकती है।

38V(5)(iii) के अनुसार राज्य सरकार की संबंधित एजेंसी को इस निष्कर्ष पर पहुंचना होगा कि क्षेत्र में मानव और वन्यजीवों के मिलजुलकर रहने के और कोई विकल्प उपलब्ध नहीं हैं। इसके लिए भी क्षेत्र के आदिवासियों की स्वीकृति आवश्यक है। अतः इस चरण में निम्नलिखित कोई भी स्थिति पैदा हो सकती है:

घ) अनुसूचित जनजाति व अन्य पारंपरिक आदिवासी स्वीकृति न दें।

च) आदिवासी स्वीकृति दे दें और राज्य सरकार की संबंधित एजेंसी यह पाए कि इस क्षेत्र में मानव और वन्यजीवों का सहवास मुमकिन है।

छ) आदिवासी स्वीकृति दे दें और राज्य सरकार की संबंधित एजेंसी यह पाए कि इस क्षेत्र में मिलजुलकर रहने के और कोई विकल्प उपलब्ध नहीं हैं।

केवल आखिरी स्थिति (छ) में ही अगले कदम तक जाने की संभावना है, जिसके बाद विस्थापन या अधिकारों पर बंदिश हो सकती है।

38V(5)(v) के अनुसार राज्य सरकार की संबंधित एजेंसी द्वारा संबंधित ग्राम सभाओं और प्रभावित लोगों को पुनर्स्थापन की बनाई गई योजना की पूरी जानकारी देने के बाद, उनकी स्वीकृति लेना आवश्यक है। अतः इस चरण में निम्नलिखित कोई भी स्थिति पैदा हो सकती है:

ज) संबंधित ग्राम सभा और प्रभावित लोग प्रस्तावित योजना को स्वीकार न करें।

झ) संबंधित ग्राम सभा और प्रभावित लोग प्रस्तावित योजना को स्वीकार कर लें।

केवल आखिरी स्थिति (झ) में ही अगले कदम तक जाने की संभावना है, जिसके बाद विस्थापन या अधिकारों पर बंदिश हो सकती है।

38V(5)(vi) के अंतर्गत, मौजूदा अधिकारों में तब तक फेरबदल नहीं की जा सकती जब तक पुनर्स्थापन स्थल पर सभी सुविधाएं व भूमि आवंटन न हो गया हो। यहां भी संभावना है कि विस्थापन समझौते के अनुरूप सुविधाएं उपलब्ध न कराई जाएं। अतः संभावना है कि अधिकारियों द्वारा दी गई सुविधाएः

त) प्रभावित लोगों को स्वीकार न हो।

थ) प्रभावित लोगों को स्वीकार हो।

अधिनियम के अनुसार, केवल आखिरी स्थिति (थ) में ही पहले से अध्वंसनीय घोषित किए जा चुके बाघ आवास-क्षेत्र से विस्थापन किया जा सकेगा।

अतः अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्र को अध्वंसनीय रखने की आवश्यकता 38V(4) द्वारा ही स्थापित हो

जाती है, लेकिन 38V(5)(iii) में ही यह तय होगा कि इस क्षेत्र से बाघ संरक्षण के हित में लोगों का विस्थापन करना ज़रूरी है या नहीं। और 38V(5)(vi) में दिए गए निर्देशों के पालन के बाद यह तय होगा कि लोग विस्थापित होंगे या नहीं।

यह रही वन्यजीव संरक्षण (संशोधित) अधिनियम, २००६ में 38V(4) व 38V(5) की बात जहां किसी क्षेत्र को अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्र घोषित करने और उससे लोगों को विस्थापित करने के बीच बहुत सारे कदम लेने होंगे। और इसमें यह कतई निश्चित नहीं है कि हर अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्र से लोगों का विस्थापन होगा या होना ज़रूरी माना जाएगा। लेकिन तृणमूल स्तर पर अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्रों को लेकर हाल ही में काफी भागदौड़ मची, जिसमें लगता है कि इन क्षेत्रों को सीधे ही मानव उपयोग रहित मान लिया गया है। १७ राज्य ऐसे हैं जहां बाघ आरक्षित क्षेत्र हैं। इनमें से ११ राज्यों ने ३१ दिसम्बर २००७ को अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्र घोषित किए। कुछ ही दिनों के अंदर बाकी ६ राज्यों ने भी यह घोषणा कर दी। इस तब्दीली से बाघ आरक्षित क्षेत्रों के अंतर्गत आने वाले कुल क्षेत्रफल (३१,६४० वर्ग कि.मी.) को अब तक अति महत्वपूर्ण बाघ आरक्षित क्षेत्र घोषित किया जा चुक है।

वन अधिकार अधिनियम, २००६ लागू करते ही सभी बाघ आरक्षित क्षेत्रों को अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्रों में बदले जाने, और अखबारों में छपी खबरों (कोष्ठ ३ देखें) के कारण कुछ समूहों ने इन बाघ आवास-क्षेत्रों के अध्वंसनीय होने के प्रावधान की व्याख्या 'मानव-उपयोग रहित' क्षेत्रों के रूप में की है, जिसमें इन क्षेत्रों में हर स्थिति में विस्थापन होना आवश्यक है। परंतु, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं वन्यजीव संरक्षण (संशोधित) अधिनियम, २००६ में यह स्पष्ट है कि किसी क्षेत्र को अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास-क्षेत्र घोषित किया जाना 38V(4) के अंतर्गत एक प्रक्रिया है और अधिकारों में फेरबदल करने या विस्थापन करने की आवश्यकता स्थापित करना 38V(5) के अंतर्गत एक अलग प्रक्रिया है। इसके अतिरिक्त, अधिनियम के अनुसार, अति-महत्वपूर्ण बाघ-आवास क्षेत्रों की घोषणा 'गाँवों के सरल रूप से विस्थापन' आश्वस्त नहीं करती है और न ही इस तब्दीली से विस्थापन से पहले की न्यायपूर्ण प्रक्रिया की अवहेलना की जा सकती है - जो सामाजिक तुल्यता व बाघ संरक्षण के उलझे हुए मुद्दों को सुलझाने के लिए ज़रूरी है।

यह माना जा सकता है कि कुछ क्षेत्रों को बाघ आरक्षण के लिऐ मानव उपयोग से मुक्त रखने की ज़रूरत हो सकती है और लोग बाघ व अन्य वन्यजीवों के हित में विस्थापन स्वीकार कर सकते हैं - पर यह कदम तभी उठाए जाने चाहिए जब धारा 38V(5) के सभी प्रावधानों को खुले व साझेदार प्रक्रिया के साथ किया जा चुका हो।

लेकिन यह मान लेना कि अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्रों में विस्थापन होना अनिवार्य है - वन्यजीव संरक्षण (संशोधित) अधिनियम, २००६ की धारा 38V(5) की उपेक्षा करना होगा और साथ ही उन सभी सकरात्मक प्रावधानों की अवहेलना होगी जिनके कारण एक वास्तविक भागीदारी की प्रक्रिया चलाने की संभावना है।

कोष्ठ - १

38V(4) इस अधिनियम के प्रावधानों के अंतर्गत, राज्य सरकार, जहां बाघ संरक्षण की योजना बनाएगी, वहीं बाघ आवास के जंगलों में रहने वाले लोगों की कृषि, आजीविकाओं, विकास व अन्य ज़रूरतों को भी सुनिश्चित करेगी।

व्याख्या - इस धारा के अंतर्गत, बाघ आरक्षित क्षेत्र (टाईगर रिज़र्व) में शामिल हैं -

38V(4)(i) राष्ट्रीय उद्यानों व अभ्यारण्यों में अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्र (क्रिटिकल टाइगर हैबिटैट), जहाँ वैज्ञानिक व निष्पक्ष तथ्यों से यह स्थापित किया गया हो कि ऐसे क्षेत्रों को बाघ संरक्षण हेतु अध्वंसनीय रखने की ज़रूरत है, जहां अनुसूचित जनजातियों व अन्य आदिवासियों के अधिकारों पर कोई प्रभाव न पड़े, और जिसकी घोषण एक विशेषज्ञ कमेटी की सहायता से राज्य सरकार द्वारा की गई हो।

38V(4)(ii) अति महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्र के किनारे के क्षेत्र (बफर या पैरिफरल क्षेत्र), जिन्हें ऊपर दी गई व्याख्या के अंतर्गत स्थापित किया गया हो, जहां कुछ कम हद तक संरक्षण की प्रक्रियाएं चलाकर भी बाघ के संरक्षण की पूर्ति की जा सकती है और जहां स्थानीय लोगों की आजीविकाओं, विकास, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अधिकारों को मान्यता देते हुए वन्यजीवों व मनुष्यों के बीच सहजीवन को बढ़ावा दिया जा सके, और जिस क्षेत्र की सीमाओं का निर्धारण वैज्ञानिक व निष्पक्ष तथ्यों के आधार पर संबंधित ग्राम सभा व विशेषज्ञ कमेटी द्वारा किया जाए।

कोष्ठ - २

38V(5)- ऐसी स्थिति को छोड़कर जहाँ लोग स्वेच्छा से स्वीकृत शर्तों के आधार पर, बशर्ते कि यह सब शर्तें इस उपधारा में दिए गए प्रावधानों को पूरा करती हों, विस्थापन स्वीकार कर लें - अध्वंसनीय बाघ संरक्षण क्षेत्र बनाने हेतु कोई भी अनुसूचित जाति या अन्य आदिवासी विस्थापित नहीं किये जा सकते या उनके अधिकारों में फेरबदल नहीं की जा सकती हैं, जब तक कि -

i) अनुसूचित जनजाति व अन्य पारंपरिक आदिवासियों के अधिकारों को मान्यता देने व उनकी बन्दोबस्ती, भूमि या वनाधिकारों के अधिग्रहण की प्रक्रिया पूरी नहीं की जाती;

ii) राज्य सरकार की संबंधित एजेंसियां, इस अधिनियम के अंतर्गत अपनी शक्तियों का उपयोग करते हुए, क्षेत्र में रहने वाले अनुसूचित जनजातियों व अन्य आदिवासियों की स्वीकृति से, क्षेत्र से परिचित किसी पारिस्थितिकीय एवं सामाजिक विशेषज्ञ के साथ विचार-विमर्श करके, यह स्थापित करें कि अनुसूचित जनजातियों व अन्य आदिवासियों की गतिविधियों से या उनकी मौजूदगी से वन्यजीवों को अपूर्णनीय हानि पहुंच रही है और इसके कारण बाघों या उनके आवास को खतरा है;

iii) राज्य सरकार, क्षेत्र में रहने वाले अनुसूचित जनजाति व अन्य आदिवासी समुदाय की स्वीकृति से तथा किसी पारिस्थितिकीय एवं समाज विशेषज्ञ की राय से, इस निष्कर्ष पर पहुंच चुकी है कि इन क्षेत्रों में सह-अस्तित्व के बाकी कोई विकल्प उपलब्ध नहीं हैं;

iv) प्रभावित लोगों व समुदायों की आजीविकाओं की पूर्ति के लिए पुनर्स्थापन या वैकल्पिक व्यवस्था तैयार की गई हो, जो कि राष्ट्रीय राहत व पुनर्वास नीति के अंतर्गत हो;

v) पुर्नवास कार्यक्रम से संबंधित उचित जानकारी देने के बाद संबंधित ग्राम सभा व इस कार्यक्रम से प्रभावित होने वाले लोगों की स्वीकृति ले ली गई हो; और

vi) कथित कार्यक्रम के अंतर्गत सभी सुविधाएं उपलब्ध कराने व पुनर्वास स्थल पर भूमि आबंटन कर दिया गया हो, नहीं तो उनके मौजूदा अधिकारों में फेरबदल नहीं की जा सकती।

कोष्ठ ३ (A)

"बाघ आरक्षित क्षेत्रों के अंतर्गत ३२,००० वर्ग कि.मी. से अधिक क्षेत्र को 'अति महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्र' घोषित किए जाने से, यह क्षेत्र अब मनुष्यों की पहुंच से दूर हो गए हैं। वन्यजीव संरक्षण अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार इन क्षेत्रों में बसे हुए गांवों को विस्थापित कर दिया जाएगा।" (संदर्भ : "गवर्नमैंट नोटिफाईज़ फौरेस्ट राईट्स ऐक्ट", इन्फोचेंज न्यूज़ एंड फीचर्स) (www.infochangeindia.org)

"वन्यजीव संरक्षण अधिनियम (संशोधित) के अंतर्गत, राज्यों द्वारा बाघ आरक्षित क्षेत्रों के अंदर अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्र घोषित किए जाएंगे, जिसके बाद ही इन क्षेत्रों के गांवों को विस्थापित किया जा सकता है। यह अनुसूचित जनजाति व अन्य आदिवासियों (वनाधिकारों को मान्यता) अधिनियम, २००६ के नियम लागू होने से पहले किया जाना चाहिए। यह नियम इस माह के अंत तक लागू होना तय है .... अगर यह इन नियमों के लागू होने के बाद किया जाता तो राज्य को एक जटिल एवं द्वेषपूर्ण प्रक्रिया के ज़रिए इन आरक्षित क्षेत्रों के अंदर बसे गांवों को विस्थापित करना पड़ता।" (संदर्भ : 'मिनिस्ट्री नोटिफाईज़ क्रिटिकल टाईगर हैबिटैट्स', द इंडियन एक्सप्रैस, दिसम्बर २६, २००७)

कोष्ठ ३ (B)

"देश के जंगलों में बसे लाखों आदिवासियों के लिए यह नए साल की एक अच्छी शुरूआत थी जब सरकार ने अंततः संसद में १ साल पहले से पास हो चुके अनुसूचित जनजाति एवं अन्य आदिवासी (वनाधिकारों को मान्यता) विधेयक, २००६ जारी कर दिया गया .....उसी दिन प्रधानमंत्री ने उन बाघ आरक्षित क्षेत्रों के 'कोर' क्षेत्रों की सूचि भी जारी की, जो अब मनुष्यों की पहुंच से बाहर होंगे - इससे संरक्षणकर्ताओं ने भी चैन की साँस ली। इसमें यह लिखा था कि कुल ११ राज्यों में जहां बाघ पाए जाते हैं, अति-महत्वपूर्ण बाघ आवास क्षेत्रों की पहचान की गई है। इस अधिसूचना के अनुसार, लगभग ३१,६४० वर्ग किमी. बाघ आरक्षित क्षेत्र, अब लोगों की पहुंच से बाहर रखे जाएंगे, जिससे कि देश में जंगली बाघों की एक उचित संख्या रखी जा सके।" (संदर्भ : 'टाईगर, टाईगर, वैनिशिंग फास्ट', द ट्रिब्यून, फरवरी २३, २००८)

"जहां बांध आरक्षित क्षेत्रों के 'कोर' क्षेत्रों को लोगों की मौजूदगी से रहित अध्वंसनीय रखा जाना है, वहां 'बफर' क्षेत्रों में लोगों और बाघों के बीच सह-अस्तित्व के आधार पर प्रबन्धन करना है। दिसम्बर २००६ में वन्यजीव संरक्षण अधिनियम में संशोधन किया गया जिससे यह प्रबंधन लागू किया जाए, परन्तु कई राज्यों में इस प्रकार के निर्धारण की प्रक्रिया चालू होना बाकी है।" (संदर्भ : पी.एम वान्ट्स स्टेटस् टू डू देर्यर बिट फॉर टाईगर कन्ज़रवेशन', द टाईम्स आफ इंडिया, फरवरी २३, २००८)

लेखक : एरिका तारापोरवाला
संपर्क : संपादकीय पते पर

उदाहरणात्मक अध्ययन

सोलिगा समुदाय एवं बिलिगिरि रंगास्वामी मन्दिर वन्यजीव अभ्यारण्य

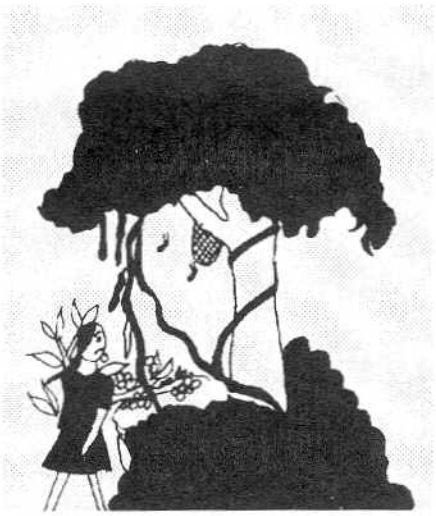

बिलिगिरि रंगास्वामी (बी.आर.) पहाडियां कर्णाटक राज्य के चमराजनगर ज़िले के येलन्दूर तालुका में स्थित है। इन पहाड़ियों के बीच ५४० वर्ग कि.मी. क्षेत्र में बिलिगिरि रंगास्वामी मन्दिर वन्यजीव अभ्यारण्य (बी.आर.टी. अभ्यारण्य) फैला हुआ है। इस क्षेत्र में लगभग १००० प्रजातियों के वनस्पति, ३८ प्रजातियों के स्तनधारी जानवर, २७८ प्रजातियों के पक्षी, २२ प्रजातियों के रेंगने वाले जानवर, ११६ तितलियों की प्रजातियां और सैंकड़ों अन्य वन्यजीव पाए जाते हैं।

सोलिगा आदिवासियों के लिए यह क्षेत्र पारंपरिक आवास स्थल भी है, जहां वे पीढ़ियों से रहते आए हैं। इस अभ्यारण्य की घोषणा १९७४ में की गई थी, जिसके बाद यह क्षेत्र वन विभाग के ताबे में आ गया। और १९८७ में इसके क्षेत्रफल का विस्तार किया गया।

सोलिगा अपनी विस्तृत पारंपरिक ज्ञान व जंगल से जुड़ी सांस्कृतिक ज़िंदगी के लिए जाने जाते हैं। शोधकर्ताओं ने रिकार्ड किया है कि सोलिगा आदिवासी १०७ पेड़ प्रजातियों, ११ घास एवं बेल प्रजातियों, १३ प्रकार के रेशा प्रजातियों, ५५ पक्षी प्रजातियों, १५ प्रजातियों के सांप, ९७ प्रजातियों के कीड़े मकौड़े और ४१ अन्य जानवरों की प्रजातियों को पहचान सकते हैं। उनकी अपनी औषधीय पद्धति है जिसे नारू-बेरू औषधि (जड़ और कंद दवाइयां) के नाम से जाना जाता है। पारंपरिक वैद्य आम बीमारियों, टूटी हड्डियों को जोड़ना व मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का सफल रूप से इलाज करते हैं। वे ३०० से अधिक स्थानीय औषधीय पौधों से दवाइयां बनाते हैं। जंगल में कुछ ऐसे क्षेत्र, प्रजातियां व पेड़ हैं जिन्हें पूजनीय माना जाता है और जिनका उपयोग नहीं किया जाता है। सोलिगाओं के अपने आस-पास के जंगल से रिश्ते के ये कुछ ही उदाहरण हैं।

पारम्परिक रूप से घुमंतु होने के साथ-साथ पोडू कृषि प्रणाली से खेती करने वाले सोलिगाओं ने, इस क्षेत्र के अभ्यारण्य घोषित किए जाने के बाद स्थिर कृषि प्रणालियों को अपना लिया है। लेकिन वे अभी भी वन विभाग द्वारा दी गई कृषि भूमि में अपनी कई पारम्परिक कृषि प्रक्रियाओं के साथ खेती करते हैं। इन खेतों में पौधों, पेड़ों, झाड़ियों व औषधीय पौधों के मिश्रण से एक अलग ही जान है। बारिश के पानी पर निर्भर इस कृषि प्रणाली में कई प्रकार की फसलें उगाई जाती हैं। जैसे *रागी, जोला, हुचुयेल्ल, अवरे और तोगड़ी*। पहाड़ों की ऊंचाई पर, जहां मौसम थोड़ा ठंडा और नमी वाला रहता है, एक के बाद एक मिश्रित फसलें पैदा की जाती हैं। यहां मक्का, सरसों, रामदाना, केले और कंद जंगल के पेड़ों के बीच उगाए जाते हैं। किसी भी कृत्रिम कीटनाशक या खाद का उपयोग नहीं किया जाता। अलग-अलग ऊंचाई की फसलों के कारण मिट्टी के उर्वरक तत्व भी बने रहते हैं। फसलों के अतिरिक्त जंगल से भी खाद्य पदार्थ इकट्ठे किये जाते हैं जैसे - शहद, कंद व जंगली फल। जंगल और फसलों से सोलिगाओं के लिए पौष्टिक व संतुलित आहार सुनिश्चित रहता है।

बी.आर.टी. अभ्यारण्य में रहने वाले सोलिगा समुदाय अपनी घरेलु आमदनी के लिए बड़े स्तर पर गैर-काष्ठीय वन उत्पाद पर निर्भर करते हैं - जिसमें अभ्यारण्य के घने क्षेत्र में रहने वालों की ६० प्रतिशत और किनारे के गांवों की ३० प्रतिशत तक निर्भरता इन्हीं वन उत्पाद पर है। अतः सोलिगा समुदाय अपने खाने, औषधि, घरेलु एवं आजीविकाओं की ज़रूरतों के लिए मुख्य रूप से जंगलों पर ही निर्भर हैं।

एक बार अभ्यारण्य घोषित हो जाने के बाद, कानूनी रूप से संसाधनों का नियंत्रण राज्य के हाथों में चला जाता है। लेकिन पहले कुछ समय तक वन विभाग ने सोलिगाओं को गैर-काष्ठीय वनोपज इकट्ठा करने दिया। इसके अतिरिक्त एकत्रित वनोपज को बेचने में सहायता के लिए ३ विशाल क्षेत्र आदिवासी बहुउद्देश्यीय सोसायटी (लार्ज एरिया आदिवासी मल्टी परपज़ सोसाईटीज़ - लैम्प्स) भी बनाई गई जो सोलिगाओं द्वारा एकत्रित सभी वनोपजों को खरीदती थी - जिससे कि सोलिगाओं के लिए एक बंधी हुई आमदनी सुनिश्चित हो गई थी। सोलिगाओं ने भी बदलती हुई प्रक्रियाओं के साथ खुद को बदलते हुए अभ्यारण्य के संरक्षण में अपनी सक्रियता बनाए रखी। हाल ही तक बी.आर.टी. अभ्यारण्य भारत के उन गिने-चुने संरक्षित क्षेत्रों में से एक था जहाँ वन विभाग व स्थानीय लोगों के बीच सौहार्दपूर्ण रिश्ता था।

इसके अतिरिक्त बी.आर.टी. अभ्यारण्य में लम्बे समय से विवेकानन्द गिरीजन कल्याण केन्द्र नामक सामाजिक संस्था एवं अशोका ट्रस्ट फार रिसर्च इन ईकौलोजी एंड एन्वायरनमैंट (एट्री) का भी सहयोग प्राप्त है। विवेकानन्द केन्द्र ने स्थानीय आदिवासी लोगों की सामाजिक व आर्थिक ज़िंदगी में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इस संस्था ने लोगों को प्रशासन, शिक्षा एवं स्वास्थ्य सुविधाओं के क्षेत्र में भी सहयोग दिया है। एट्री ने सोलिगाओं को आमला व शहद जैसे गैर-काष्ठीय वनोपज को सतत रूप से इकट्ठा करने का प्रशिक्षण दिया है। एट्री इन एकत्रीकरण प्रक्रियाओं का पारिस्थितिकीय प्रभावों का निरीक्षण भी कर रही है। और उनका कहना है कि इन प्रक्रियाओं से इकट्ठी की जा रही प्रजातियों पर नकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ रहा और यह एक सतत प्रक्रिया है। अतः विवेकानन्द केन्द्र व एट्री ने सोलिगाओं के साथ, एक-दूसरे के साथ और वन विभाग के साथ मिलकर काम करके पहले से चले आ रहे 'उद्योग आधारित संरक्षण परियोजना' को और भी मज़बूत किया है।

लेकिन यह स्थिति २००६ में बदल गई। वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, १९७२ को २००३ में संशोधित किया गया, जिसके अंतर्गत 'व्यवसायिक उपयोग' के लिए वन संसाधनों की निकासी पर रोक लगा दी गई। इस संशोधन के कारण देश भर के आदिवासियों की आजीविका का नुकसान हुआ है, जिनमें से कई तो भुखमरी के कगार पर खड़े हैं। बी.आर.टी में यह संशोधन २००६ में लागू होने के बाद सोलिगाओं की आजीविकाओं व जीने की ज़रूरतों पर भी भारी असर पड़ा जिसके कारण सोलिगाओं और वन विभाग के बीच का रिश्ता भी टूट गया।

टाईम्स ऑफ इंडिया की अप्रैल २६, २००७ की एक रिपोर्ट के अनुसार बी.आर.टी के जंगलों में भीषण आग लगी। इन आगों का सिलसिला मार्च २००७ में शुरू हुआ और कुछ आगें तो कुछ दिनों तक सुलगती रहीं। कुछ वन विभाग के अधिकारियों ने सोलिगा आदिवासियों पर इसकी ज़िम्मेदारी डालते हुए कहा कि सोलिगाओं ने गैर-काष्ठीय संसाधनों पर प्रतिबन्ध के विरोध में ऐसा किया है। इसके बाद ३० मार्च, २००७ को स्थानीय अखबार प्रजावाणी में छपा कि कुछ सोलिगाओं को वन विभाग के अधिकारियों ने पीटा व लातों से मारा।

पहले-पहल तो यह नामुमकिन लगा कि जिन सोलिगाओं का जंगलों के साथ इतना अच्छा पारंपरिक रिश्ता रहा है, वे इस तरह योजनाबद्ध तरीके से अभ्यारण्य को नष्ट कर सकते हैं। इस मामले की छानबीन कल्पवृक्ष द्वारा की गई, जो कई दशकों से बी.आर.टी. की घटनाओं को करीब से देखते आ रहे हैं। क्षेत्र के सभी साझेदारों - जैसे सोलिगा, विवेकानन्द केन्द्र, एट्री एवं वन विभाग से बात करने, आग लगे क्षेत्रों को देखने और सभी संबंधित रिकार्डों का अध्ययन करने के बाद छानबीन करने वालों ने अपने निष्कर्ष व संस्तुतियां पेश कीं।

संस्तुतियों के अनुसार, किसी एक कारण को आग के लिए ज़िम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता। २००७ की आगों के लिए कई मिले जुले कारण निकल कर सामने आए :

१) उस वर्ष के पहले चतुर्मास में आम वर्षों के मुकाबले कम बारिश हुई ।

२) लैन्टाना की झाड़ियों की कटान न होने के कारण जंगल में भरपूर ज्वलनशील सामग्री उपलब्ध थी।
३) उस वर्ष वन विभाग ने आग से बचाव के लिए उचित कदम नहीं उठाए।
४) संभवतः कुछ सोलिगाओं ने गैर-काष्ठीय वनोपज पर प्रतिबंध के गुस्से में थोड़ी बहुत आग लगाई होगी।
५) संभवतः आस पास के क्षेत्रों के गैर आदिवासी लोगों ने वन विभाग द्वारा उनके विरुद्ध की गई कार्यवाही के विरोध में आग लगाई हो।
६) संभवतः पर्यटकों की गलती से आग लग गई हो।

छान-बीन ने इस बात पर प्रकाश डाला कि आग शुरू होने के कई कारण हो सकते थे । लेकिन इन सब बाकी कारणों की जांच किए बिना ही सोलिगाओं पर आरोप लगा कर उन्हें हिरासत में ले लिया गया और मारा गया। छानबीन में अन्य कई गम्भीर मुद्दे भी उभर कर सामने आए जिसमें यह भी शामिल था कि सोलिगाओं की स्थिति व उनके संवैधानिक अधिकारों व मूलभूत मानव अधिकारों के हनन के परिणामस्वरूप संरक्षण से उनके सबंधो पर प्रभाव पड़ा हैं।

उदाहरण के तौर पर पहले जहां वे आंवला के पेड़ों की अवैध कटान को खुद रोकते थे या वन विभाग को रिपोर्ट करते थे वहां २००६ के बाद से वे इसे अनदेखा करने लगे । उसी तरह २००६ के बाद अन्य वर्षों की अपेक्षा में, सोलिगाओं ने खुद आग बुझाने या उसकी रिपोर्ट वन विभाग को देने में ज़्यादा उत्साह नहीं दिखाया - और इसका कारण है २००६ में लागू किए गए गैर-काष्ठीय वनोपज पर लगाए गए प्रतिबंध ।

छानबीन करने वाली टीम ने अपनी संस्तुतियों में मांग की कि वन्यजीव संरक्षण अधिनियम, १९७२ के २००३ के संशोधन का पुर्नावलोकन किया जाए और प्रमाणिक आजीविका की ज़रूरतों के लिए गैर-काष्ठीय वनोपज को जमा करने की अनुमति दी जाए। इस प्रक्रिया को नियंत्रित व प्रतिबंधित करने के नियम स्थानीय लोगों के साथ विचार-विमर्श करके बनाए जाएं।

इस टीम ने यह भी सुझाया कि अनुसूचित जनजाति और अन्य आदिवासी (अधिकारों को मान्यता) अधिनियम, २००६ के लागू होने से सोलिगाओं और वन विभाग के संबंध फिर से बदल सकते हैं, जिसके माध्यम से सामाजिक व आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण कई लाभ सोलिगाओं को उपलब्ध हो सकते हैं। लेकिन टीम ने सभी साझेदारों को सावधान करते हुए यह भी कहा कि यदि अधिनियम में दिए गए अधिकारों और संरक्षण की ज़िम्मेदारियों के बीच संतुलन नहीं बनाया गया तो इसके कारण गंभीर पारिस्थितिकीय नुकसान भी हो सकते हैं। इसी से संबंधित एक सुझाव यह भी था कि सामाजिक संस्थाओं, वन अधिकारियों और सोलिगाओं को अनुसूचित जनजाति एवं अन्य आदिवासी अधिनियम के प्रावधानों को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए और सोलिगाओं को उनके अधिकार दिलवाने व उनके आस-पास के जंगलों व वन्यजीवों के संरक्षण की ज़िम्मेदारी व अधिकार स्थापित करवाने के लिए तैयार रहना चाहिए।

हालांकि स्थिति गंभीर नज़र आ रही थी, छानबीन वाली टीम का कहना है कि सोलिगाओं की संरक्षण की परंपरा, क्षेत्र में सामाजिक व शोधकर्ता संस्थाओं का लम्बे समय से जुड़ाव, पिछले समय में वन विभाग द्वारा 'उद्योग आधारित संरक्षण परियोजना' चलाने के प्रयत्न और इतने लंबे समय से इन सभी साझेदारों के बीच एक अच्छे संबंध के कारण आज भी संभव है कि बी.आर.टी.अभ्यारण्य सांझे संरक्षण प्रयास का एक सफल उदाहरण बन जाए। ऐसे प्रयास में संरक्षण के प्रत्येक स्तर पर स्थानीय समुदायों की साझेदारी होनी चाहिए, न कि यह कि वे पहले से तैयार की गई योजना में वे एक कठपुतली की भूमिका निभाएं।

संक्षेप में, जहां बी.आर.टी. अभ्यारण्य में २००६ से पहले की स्थिति उस बात का उदाहरण है कि किस तरह विभिन्न ऐजेंसियां साथ आकर संरक्षण व आजीविकाओं दोनों के लिए काम कर सकती हैं, वहीं २००७ की आग से यह स्पष्ट हो जाता है कि अचानक व ज़बरदस्ती किए गए संशोधनों से आदिवासियों की आजीविकाओं पर दुष्प्रभाव पड़ता है - और यह संरक्षण के लिए भी हानिकारक है। लेकिन इस अभ्यारण्य में सहकारिता का लम्बा इतिहास है और हाल में ही हुए जंगल व संबंधों के नुकसान को ठीक कर बी.आर.टी. अभ्यारण्य वास्तव में सांझे प्रबंधन द्वारा संरक्षित क्षेत्र का एक सफल उदाहरण बन सकता है। कभी-कभी आग लगने के बाद ही हमें स्थिति में मौजूद गुणों का अहसास होता है और फिर से प्रतिबद्धता के साथ आगे बढ़ने का रास्ता दिखाई देता है। बी.आर.टी. अभ्यारण्य की आग शायद ऐसी ही एक आग थी।

स्रोत :
"फौरेस्ट फायर्स एंड द बैन ऑन एन.टी.एफ.पी. कलैक्शन इन बिलिगिरि रंगास्वामी टैम्पल सैंक्चुरी, कर्णाटका - रिपोर्ट ऑन अ फील्ड इनवैस्टीगेशन एंड रैकमेनडेशन्स फौर ऐक्शन", आशीष कोठारी, सैली पालान्डे, मिलिंद वाणी और केया आचार्या
संपर्क : संपादकीय पते पर

"फौरेस्ट्स अलाईव! ऐन एन्वायरनमैन्टल हैंडबुक फौर टीचर्स इन बिलिगिरी रंगास्वामी टैम्पल वाईल्डलाईफ सैंक्चुरी, कर्णाटका", सुजाता पद्मनाभन, सुनीता राव व यशोधरा कुदांजी
संपर्क : संपादकीय पते पर

"अ केस स्टडी ऑन एट्री, ऐक्सपीरियैन्सिस इन पार्टिसिपेटरी रिसोर्स मोनिटरिंग", कम्यूनिटि फौरेस्ट्री, सिदप्पा सेतली एवं सुश्मिता मंडल
संपर्क : एटी, न. ६५६, ५A , मेन रोड हैब्बल, बैंगलोर ५६००२४, भारत

भारत के राज्यों से समाचार

अरुणाचल प्रदेश

पांगचेन घाटी के संरक्षण में मोनपा समुदाय का सहयोग

अरूणाचल प्रदेश के जंगलों में विविध प्रकार के पेड़ पौधे व जीव जंतु हैं। इनमें बुरांश जैसे औषधीय पौधे व कई संकट ग्रस्त जानवर जैसे लाल पान्डा (*Ailurus fulgens*) और कस्तूरी हिरण (*Moschus chrysogaster*) शामिल हैं।

जंगल व वन्य जीवों का संरक्षण अरूणाचल प्रदेश की जनजातीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। पांगचेन घाटी के मोनपा समुदाय भी इससे अलग नहीं है। यह तब साबित हो गया जब कुछ मोनपा युवाओं ने एक वन अधिकारी व एक मोनपा गाईड को अपने जंगलों में शिकार करते हुए पकड़ा। मोनपा गाईड को एक पूरे दिन भूखा रखा गया और उस पर रू.१०,००० का कड़ा फाइन लगाया गया और वन अधिकारी को धमकी दी गई कि अगर वह फिर से इन जंगलों में शिकार करता पाया गया तो उसकी शिकायत उसके वरिष्ठ अधिकारियों को कर दी जाएगी।

इस घटना के कुछ ही दिनों में आदिवासी समुदाय ने तावान्ग उप-कमिश्नर (वन) व सैन्य अधिकारियों को एक पत्र लिखा। उस पत्र में लिखा गया, "पांगचेन घाटी में मछली पकड़ने, जंगली व पालतु जानवरों का शिकार करने व पक्षियों को मारने पर प्रतिबंध है। यदि कोई गांव वाला शिकार करते हुए पकड़ा गया तो रू.१०,००० जुर्माना किया जाएगा। और यदि शिकारी गांव से बाहर का हुआ तो रू. २०,००० प्रति व्यक्ति जुर्माना किया जाएगा।"

देगिंग दोर्जे, एक स्थानीय मोनपा है। उनका कहना है कि उनके समुदाय ने इससे पहले और भी कड़े जुर्माने किए हैं और सज़ा में अपराधियों को कई बार जंगल में दौड़ भी लगवाई है।

संरक्षण में स्थानीय लोगों की भागीदारी के महत्व को मान्यता देते हुए - स्थानीय सरकार व वन विभाग ने डब्ल्यू. डब्ल्य. एफ. भारत के साथ अरुणाचल प्रदेश में इस सहभागिता को औपचारिक रूप देने के लिए हाथ जोड़े हैं।

सेजल वोराह, जो डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ. - भारत के साथ काम करती हैं का कहना है, "इस पहल में सरकार व स्थानीय समुदाय दोनों काफी सक्रिय हैं। उत्तर-पूर्वी भारत में सामुदायिक संरक्षण का मुद्दा नया नहीं है। हम केवल स्थानीय समुदाय व सरकार को औपचारिक नियम बनाने में मदद कर रहे हैं।"

गांव के निवासियों का भी कहना है कि पिछले कुछ समय से शिकार में भारी कमी आई है।

स्रोतः मीनल दुबे, "द ट्राईब्समेन आर वन इन प्रोटैक्टिंग देयर फौरेस्ट फ्राम एनी थ्रैट", मेल टुडे, नवंबर २००७

अपतानी समुदाय की परंपराओं को पुनर्जीवन

अपतानी समुदाय अरूणाचल प्रदेश के निचली सुबांसरी जिले की अपतानी घाटी में रहते हैं। वे अपने पारंपरिक धान व मछली उत्पादन, फसलों की जैव-विविधता व उससे जुड़े पारंपरिक ज्ञान के लिए प्रसिद्ध हैं।

अपतानियों की अपनी पाबंदियां, पारंपरिक कानून व मान्यताएं हैं जो उनके पर्यावरण के साथ-साथ उनकी

सामाजिक व सांस्कृतिक पहचान व आजीविकाओं की भी सुरक्षा करते हैं। मुख्य त्योहारों व पारंपरिक पूजाओं के समय जानवरों के शिकार व वन संसाधनों को उपयोग करने पर कड़ी पाबंदी है। कई जीवों व पौधों को पूजनीय माना जाता है और उनकी रक्षा की जाती है। उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं - बांस, *कैस्टानोप्सिस* व *फाईकस* पेड़। वे बेंत प्रजातियों, जैसे *फ्रैगमाइट्स कार्का,* और *हुट्टीनिया कोरडाटा* को नदी के घाटों पर उगाते हैं व उनकी सुरक्षा करते हैं। इन पौधों की जड़ें भूमि के कटाव को रोकती हैं। *फ्रैगमाइट्स* को केवल पारंपरिक चटाइयां बनाने के लिए काटा जाता है और इसे पारंपरिक नमक बनाने की प्रक्रिया में भी उपयोग किया जाता है। *हुट्टीनिया कोरडाटा* को उसके औषधीय गुणों के लिए व सब्जी के रूप में उपयोग किया जाता है।

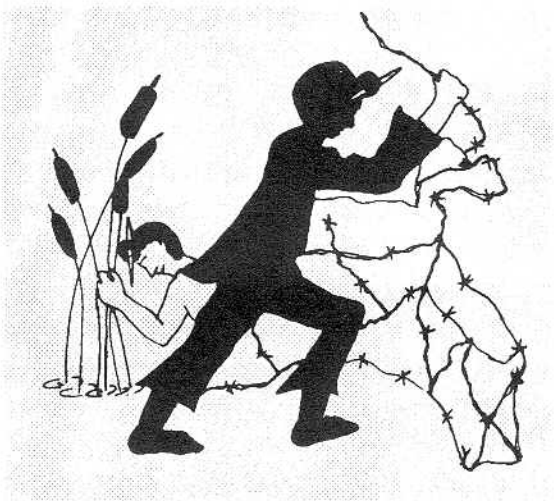

अपतानी समुदाय को परंपरागत रूप से फसलों और भूमि के आपसी रिश्ते, मिट्टी व भूमि के विषय में परंपरागत ज्ञान व ज़मीन और पानी के संरक्षण का ज्ञान है। इनके सुचारु रूप से परिभाषित संस्थाएं हैं, जो उनकी जीवन-शैली को सहयोग देते हैं। उदाहरण के लिए *बोगो* नाम की परंपरागत संस्था जिसका मुखिया *बोगो अहतोह* होता है। इस संस्था की ज़िम्मेदारी है पानी उपलब्ध कराने के लिए टंकियों इत्यादि का निर्माण व रख-रखाव करना और सुनिश्चित करना कि समुदाय के सभी लोगों को बराबर पानी मिले। *बोगो अहतोह,* जिसे समुदाय के बीच में से चुना जाता है, १-३ वर्ष के लिए काम करता है। इसी प्रकार *ऐन्थी पतंग* नाम की परंपरागत संस्था का मुखिया *पतंग अहतोह* है जिसकी ज़िम्मेदारी है फसलों को कटवाना व उनकी व्यवस्था करना।

पिछले कुछ समय में इस परंपरागत व्यवस्था में बाहरी प्रभाव आने लगे हैं। जैसे - परंपरागत कांटाबाड़ के स्थान पर कांटे वाली तारों से बाड़ लगाना। और लोगों ने औषधीय पौधे लगाना बंद कर दिया था जो लोगों के लिए दवाई उपलब्ध कराते थे और भूमि-कटाव को भी रोकते थे। इसी प्रकार १९९० में किसानों ने ज़्यादा उपज देने का दावा करने वाले आधुनिक बीज व रसायनिक खाद का उपयोग शुरू कर दिया। लेकिन पिछले १५ सालों में किसानों को अहसास हो गया कि इन नए तरीकों के कारण उनकी कृषि जैव विविधता और आजीविका को नुकसान पहुंचा है और अब वे अपने पारंपरिक बीजों व कृषि-प्रक्रियाओं पर वापिस लौट रहे हैं।

हाल में ही उन्होंने प्रस्ताव पारित किया है कि कृषि भूमि को अन्य किसी उपयोग में नहीं लाया जाएगा तथा संसाधनों (जैसे सिंचाई के स्रोतों के पास पत्थर व रेत की खदानें) के असतत उपयोग की प्रक्रियाओं पर रोक लगाई जाएगी। इसके अतिरिक्त, पारंपरिक प्रक्रियाओं की अवहेलना करने पर जुर्माना लगाया जाएगा।

स्रोतः मिहिन डोलो
संपर्क: मिहिन डोलो, गोबिन्द बल्लभ पंत इन्स्टिट्यूट आफ हिमालयन एन्वायरनमैंट एंण्ड डैवलपमैंट, उत्तर-पूर्वी इकाई, विवेक विहार, ईटानगर ७९११३, अरुणाचल प्रदेश, भारत;
ईमेलः mihindollo@gmail.com

पाके बाघ आरक्षित क्षेत्र की पहल

अरूणाचल प्रदेश के पूर्वी कामेन्ग ज़िले में पाके बाघ आरक्षित क्षेत्र के १६ पड़ोसी गांवों के मुखियाओं ने 'घोरा आभे' नामक कमिटी का गठन किया है। इस इलाके में जंगली जानवरों का शिकार एक आम बात है। और इस आरक्षित क्षेत्र में जंगली जानवरों की सुरक्षा करना 'घोरा आभे' कमिटी का मुख्य उद्देश्य है। वन मंडल अधिकारी, ताना तापी ने उन्हें यह कमिटी बनाने में सहयोग दिया है।

कमिटी ने हाल ही में वन्य जीव अपराधों के लिए जुर्मानों की एक सूचि जारी की है। इसके तुरंत बाद इस क्षेत्र में शिकारियों से ३२ बंदूकें ज़ब्त की गईं। कई शिकारियों ने आरक्षित क्षेत्र के संरक्षण के लिए काम करने का वादा भी किया है। कमिटी खुफिया नेटवर्क बनाने व नियमों को लागू करने का काम भी करेगी।

गांव वालों को शिकार रोकने व प्राकृतिक संसाधनों के सतत उपयोग करने के लिए प्रोत्साहित करने में गांव के बड़े-बूढ़ों की अहम भूमिका रही है। आजकल वाइल्ड लाइफ ट्रस्ट ऑफ इंडिया गांव बूढ़ों को मानदेय देकर उनके संरक्षण के कार्य को सहयोग दे रही है।

पाके बाघ आरक्षित क्षेत्र, नामेरी बाघ आरक्षित क्षेत्र (असम) से जुड़ा हुआ है। और बाघों तथा अन्य दुर्लभ व लुप्त प्राय प्रजातियों, जैसे तेंदुआ *(Panthera pardus)*, हिमालयी काला भालू *(Ursus thibetanus)* और हाथी *(Elephas maximus)* के लिए एक महत्वपूर्ण आवास-स्थल है। इस क्षेत्र में खाने के लिए जंगली जानवरों का शिकार करना एक आम बात है - और स्थानीय लोगों व अन्य संस्थाओं द्वारा लिए जा रहे कदम वन्य जीव संरक्षण के लिए महत्वपूर्ण हैं।

स्रोतः "विलेजर्स ज्वाइन हैन्ड्स टू प्रोटैक्ट पाखुई टाइगर रिज़र्व इन अरूणाचल प्रदेश", हिन्दुस्तान टाईम्स
संपर्क : वन मंडल अधिकारी, पाखुई वन्य जीव अभ्यारण्य परिक्षेत्र, पोस्ट सेजुसा, जिला पूर्वी कामेन्ग ७६०१०३, अरूणाचल प्रदेश, भारत

असम

दीपौर बील

असम में दीपौर बील (१००० एकड़) लाखों पक्षियों के लिए प्रजनन व चुगान की जगह है। और प्रवासी पक्षियों के सफर में यह एक महत्वपूर्ण चरण है। यहां पर २१६ प्रजातियां जिनमें ७० से ऊपर प्रवासी प्रजातियां हैं, रिकार्ड की गई हैं। यह जल क्षेत्र विश्व की १७ लुप्तप्राय प्रजातियों के लिए आवास-स्थल उपलब्ध कराता है। इनमें शामिल हैं - स्पाट बिल्ड पेलिकन *(Pelecanus philippensis)*, बेयर्स पोचार्ड *(Aythya baeri)*, लैसर एडजुटैंट स्टौर्क *(Leptoptilos javanicus)*, पालासेस सी ईगल *(Haliaeetus leucogaster)*, स्लैन्डर बिल्ड वल्चर *(Gyps tenuirostris)*, फैरूजिनस डक *(Aythya nyroca)* और ग्रेटर एडजुटैंट स्टौर्क *(Leptoptilos dubius)* जैसी दुर्लभ प्रजातियां। इन सभी कारणों से बर्डलाइफ इंटरनैशनल नामक अंतर्राष्ट्रीय संस्था ने दीपौर बील को एक 'महत्वपूर्ण पक्षी क्षेत्र' *(Important Bird Area)* घोषित किया है, जहां संरक्षण को उच्चतम प्राथमिकता है। रामसर इंटरनैशनल कन्वैनशन ऑन वैटलैन्ड्स द्वारा मान्यता प्राप्त विश्व के सबसे महत्वपूर्ण जल क्षेत्रों में से यह क्षेत्र एक है।

इस जलक्षेत्र में विविध प्रकार की मछलियां भी बड़ी संख्या में पाई जाती हैं। इनमें लगभग १६ परिवारों की ५० प्रजातियां शामिल हैं। यह जलक्षेत्र एक प्रमुख मछली-प्रजनन स्थल है और अन्य कई नदियों व जलक्षेत्रों के लिए मछलियों का बीज भी कुदरती तौर पर दीपौर बील से ही पहुंचता है।

दीपौर बील के आसपास रहने वाले १४ गांवों में १२०० परिवार अपनी आजीविका के लिए यहाँ के प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर हैं। ताज़े जल की मछलियां उनके पोषण व आय के लिए एक प्रमुख साधन है। इन लोगों का स्वास्थ्य सीधे-सीधे जल क्षेत्र के स्वास्थ्य से जुड़ा है।

असम, विश्व के सबसे ज़्यादा वर्षा प्राप्त करने वाले प्रदेशों में से एक है। हाल में ही किये गये कुछ अध्ययनों में यह साबित होता है कि यदि दीपौर बील जैसा विशाल क्षेत्र पानी का संचय नहीं करता तो असम की राजधानी गुवाहाटी हर साल बारिशों के मौसम में बाढ़ में डूब जाती। यह जलक्षेत्र औद्योगिक विषैले पदार्थों से प्रदूषित पानी को साफ व स्वच्छ करने की महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है, जिससे कि पानी मानव उपयोग के लायक बनता है।

दीपौर के पारिस्थितिक महत्व को अनदेखा कर गुवाहाटी शहर की सारी गंदगी नियमित रूप से डीपौर के पानी में फैंकी जाती है। दीपौर के किनारे बनाए जा रहे गैर-कानूनी बसाहटों व उद्योगों से सरकारी अधिकारियों ने अपनी नज़र फेर ली है। इसके कारण इस जल-क्षेत्र में प्रदूषण व गंदगी की समस्या बढ़ती जा रही है। और अगर इसी तरह बस्तियां व उद्योग बढ़ते रहे तो पानी के बहाव पर असर पड़ सकता है, जिसके कारण इस जलक्षेत्र में मिट्टी इत्यादि भर जाएगी।

लेकिन दीपौर बील का विनाश रोकने के लिए स्थानीय समुदायों व वैज्ञानिकों के हाथ जोड़ने से एक आशा की किरण नज़र आती है।

इस वर्ष अंतर्राष्ट्रीय जल-क्षेत्र दिवस (२ फरवरी) का मुख्य विषय था : 'स्वस्थ जलक्षेत्र ; स्वस्थ लोग'। दीपौर के स्थानीय समुदाय व वैज्ञानिकों ने विश्व समुदाय से

आग्रह किया कि वे उन्हें अपने व जलक्षेत्र के स्वास्थ्य की सुरक्षा में सहयोग दें। उनका प्रस्ताव है: एक विस्तृत प्रबन्धन प्रणाली, जिसमें स्थानीय समुदायों की सहभागिता पर पूरा ज़ोर हो।

भूपेन दास, जो दीपौर बील मछुआरा सहकारी समिति के प्रतिनिधि हैं, कहते हैं - "हमारे पूर्वज़ों ने इस जल-क्षेत्र की सुरक्षा की और हम भी इसके लिए प्रतिबद्ध हैं, क्योंकि हम अपनी आजीविकाओं के लिए इस जल क्षेत्र पर निर्भर हैं" ।

स्रोत: "मूव टू कन्जर्व दीपौर बील विद हैल्प ऑफ लोकल्स", असम ट्रिब्यून, जनवरी २००८

संपर्क: प्रशांत साइकिया, (डीपोर बील रामसर क्षेत्र संरक्षण समुदाय), *डिपार्टमैंट आफ ज़ूओलौजी,* गुवाहाटी विश्वविद्यालय, गुवाहाटी ७८१०१४, असम, भारत;
ईमेल: saikiapk@rediffmail.com

विभाब तालुकदार (आरण्यक) ५०, समन्वय मार्ग, वशिष्ठ रोड, बेलतोला, गुवाहाटी ७८१००८, असम, भारत;
ईमेल: bibhab@aaranyak.org

मोलोय बरूआ (अरली बर्ड्स), २६, सूरजमुखी, चंदमड़ी, सिलपुखुरी, गुवाहाटी ७८१००३, असम, भारत;
ईमेल: moloybarauh@yahoo.co.in

अचिंत बेजबरूआ, सिविल इन्जिनीयरिंग के सहायक प्रोफैसर, उत्तरी डकोटा राज्य विश्वविद्यालय, फारगो, एन.डी.५८१०५, अमेरिका;
फोन: ७०१-२३१-७४६१; फैक्स : ७०१-२३१-६१८५;
ईमेल: a.bezbaruah@ndsu.edu

कर्नाटक

कोक्करे बेल्लूर

शतकों से स्पौट बिल्ड पैलिकन (*Pelicanus philippensis*), पेन्टेड स्टौर्क (*Mycteria leucocephala*) व मनुष्य कर्नाटक के मान्ड्या जिले में बेल्लूर गांव में सौहार्दपूर्ण रूप से रहते आए हैं। दो दशकों से गांव की संस्था - *हेज्जारला बलागा* या पैलिकन समुदाय - पैलिकन पक्षी के आवास स्थलों की बढ़ौतरी और घायल पक्षियों के पुनर्वास के लिए सक्रिय रूप से काम कर रही है। इन दो प्रजातियों के अतिरिक्त इस छोटे से गांव में १४० अन्य पक्षी प्रजातियां भी रिकार्ड की गई हैं। गांव वाले प्रकृति प्रेमियों व पक्षियों को देखने आए पर्यटकों का स्वागत करते हैं और स्थानीय युवा व बच्चे इन अतिथियों को विभिन्न प्रजातियां पहचानने व पुनर्वास केन्द्र दिखाने के लिए उत्साहित रहते हैं।

हालांकि संरक्षण के सभी प्रयास स्थानीय ही रहे हैं वन विभाग ने इस छोटे-से पक्षी प्रेमी गांव में पर्यटकों को आकर्षित करने की कई कोशिशें की हैं - इनमें विलासती होटल व कान्क्रीट की मचानें बनाना शामिल है। गांव वालों का मानना है कि ऐसा करने से बहुत ज़्यादा पर्यटक आने लगेंगे जिससे न सिर्फ पक्षियों को हानि होगी, अपितु इस शांत व सुंदर गांव की सामाजिक संरचना पर भी बुरा असर पड़ेगा।

हाल ही में वन विभाग ने स्वत: इस क्षेत्र को सामुदायिक आरक्षित क्षेत्र घोषित करने का प्रस्ताव दिया। यह एक प्रकार का संरक्षित क्षेत्र है, जिसे कोई भी व्यक्ति या समुदाय अपनी भूमि पर घोषित कर सकता है। गांव वालों ने स्पष्ट किया कि यह कदम न ही पक्षियों के हित में है और न ही गांव के। उन्होंने जिलाधीश, मुख्य वन संरक्षक एवं राज्यपाल को पत्र लिखे जिसमें उन्होंने वन विभाग द्वारा अकेले ही लिए गए इस कदम का विरोध व्यक्त किया।

स्रोत: अमित उपाध्याय, "विलेजर्स अपोज़ कन्ज़रवेशन रिज़र्व", संडे टाइम्स आफ इंडिया, टाइम्स सिटि

संपर्क: मनु, हेज्जारला बलागा, कोक्करे बेल्लूर, मद्दूर तालुका, मांड्या ज़िला, कर्णाटक ५७१४३६, भारत;
मोबाइल: ०९८८६३८३७६३; ई-मेल:
pelicanmanu@gmail.com

स्लैंडर लोरिस को मिला घर

छोटा सा स्लैंडर लोरिस (*Loris tardigradus*) कर्नाटक में बैंगलोर से ८६ कि.मी. दूर नागावल्ली गांव में बड़ी संख्या में पाया जाता है। १९९६ में कुछ स्कूल के बच्चें ने पैंसिल जैसी पतली टांगों, बिना पूंछ और प्लेट जैसी बड़ी आंखों वाले २ जानवर अपने स्कूल के बांस के झुरमुट में देखे। उन्होंने अपने अध्यापक श्री गुंडप्पा बी. वी. को इसके बारे में बताया।

इसके बाद गांव के अन्य हिस्सों व पड़ोसी क्षेत्रों में भी स्लैंडर लोरिस देखा गया। गांव वाले ध्यान रखते हैं कि लोग इस शर्मीले जानवर को परेशान न करें और अब तो उन्होंने सक्रिय रूप से स्लैंडर लोरिस का संरक्षण भी शुरू कर दिया है। उदाहरण के लिए - उन्होंने विद्युत विभाग से आग्रह किया है कि वे बिजली की तारों को *इंसुलेट* कर दें जिससे कि स्लैंडर लोरिस को बिजली का झटका न लगे।

संरक्षणकर्ता विचार कर रहे हैं कि वन विभाग पर दबाव डालकर गांव को सामुदायिक आरक्षित क्षेत्र घोषित करवा दें।

स्रोतः अमित उपाध्याय, "दिस विलेज हैस एन अनयूजुअल फ्रैंड", संडे टाईम्स आफ इंडिया, टाईम्स सिटि
संपर्कः अहमद अमीन, वाईल्डलाइफ अवेयर नेचर क्लब, निसर्ग ले आउट, तुमकुर ५७२१७३, कर्णाटक, भारत;
ई-मेलः tumkurameen@gmail.com

ग्रामीण महिला ओकुट्टा

मंगम्मा एक किसान होने के साथ-साथ पारंपरिक बीजों के संरक्षक भी हैं। उनके पास २० एकड़ के खेत हैं। उनमें से १० एकड़ पर वे धान, रागी, मक्का, मटर, अवरे, चना, टोगारी व अन्य फसलें उत्पन्न करती हैं। ३ एकड़ पर वे रागी, अवरे व अन्य दालों की मिश्रित खेती करती हैं। उनकी छोटी सी ज़मीन के बाकी बचे हिस्से पर वे २० प्रकार की सब्जियां उत्पन्न करती हैं - जिसमें बैंगन, टमाटर, मिर्च, प्याज़, लौकी, भिंडी व अन्य पत्तेदार सब्जियां शामिल हैं। इस प्रकार के पुराने तरीके की मिश्रित खेती के कारण खेत में जैव विविधता तो बनी ही रहती है, साथ-ही-साथ किसानों के परिवारों के लिए अन्न व आजीविका की स्रोत भी सुनिश्चित रहती है। मंगम्मा कर्णाटक के कोलार ज़िले में मुलबगल तालुका के ग्रामीण महिला ओकुट्टा (ग्रामीण महिला महासंघ) के बोर्ड की भी सदस्य हैं। वे कोलार ज़िले के १४५ गांवों में परिवर्तन लाने वाली महिलाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह महिलाएं परंपरागत बीजों के साथ साथ उनसे जुड़े परंपरागत ज्ञान का भी संरक्षण कर रही हैं।

जनपद जात्रा एक ऐसा मेला है जहां इस प्रकार के संरक्षणकर्ता अपने बीजों व विचारों के आदान-प्रदान के लिए आते हैं। यह मेला कोलार शहर में लगता है। मंगम्मा और उनके साथी ऐसे मेलों में हमेशा दुकानें लगाते हैं। उनका उद्देश्य साफ है - वे यहां अपनी बीजों के संरक्षण व प्राकृतिक संसाधनों की व्यवस्था की कहानियों के माध्यम से स्वयत्ता का प्रचार करने आते है। इसके अतिरिक्त इन मेलों में उनके सामान की बिक्री भी हो जाती है।

कई लोग ग्रामीण महिला ओकुट्टा की दुकान पर आकर अपने भूले हुए बीजों व फसलों को देखकर भाव-विभोर हो जाते हैं। कुछ लोग इन बीजों को फिर से घर ले जाकर बोना चाहते हैं। मंगम्मा मुफ्त बीज बांटने में खुश रहती हैं - बशर्ते कि लोग फसल तैयार होने पर दुगुनी मात्रा में बीज बैंक को वापिस करेंगे। इस प्रकार स्थानीय बीज संरक्षकों के दल में नए सदस्य जुड़ते जाते हैं।

आज दूर-दूर के लोगों को मालूम है कि अच्छी गुणवत्ता वाले पारंपरिक बीजों के लिए यह बीज बैंक एक विश्वसनीय स्रोत है। प्रतिवर्ष लगभग ३५० किसान इस बीज बैंक से बीज ले जाते हैं। इससे पहले इस क्षेत्र के लोग उधारी व सूखे की दोहरी मार झेल रहे थे। दोनों का एक ही मुख्य कारण था - उच्च उत्पादकता देने का दावा करने वाले आधुनिक बीज, जिन्हें सत्तर के दशक में भारी प्रचार से इस वायदे के साथ बेचा गया कि इससे लोगों की आमदनी बढ़ेगी। लेकिन इन फसलों के साथ रसायनिक खाद, कीटनाशक दवाइयां और पानी की अत्याधिक ज़रूरत भी साथ आई। और जल्द ही ज़मीन के नीचे पानी का स्तर ३० फीट से गिरकर ८०० फीट तक पहुंच गया। टंकियों और तालाबों, जो पूरे ज़िले के

लिए पानी का मुख्य स्रोत हैं, में रेत भर जाने के कारण पानी के स्तर में कमी आ गई। रसायनिक खाद आसानी से मिल जाने के कारण किसानों ने तालाब में इकट्ठी हुई मिट्टी (जिसे वे पहले खेती में उपयोगी मानते थे) निकालना बंद कर दिया था। इस प्रकार रसायनों के उपयोग व पानी की कमी से प्रताड़ित भूमि अब उन लोगों का भार नहीं सह पा रही थी जिन्हें कई पुश्तों से वही भूमि पालती आ रही थी। अतः लोग अपने बंजर खेत छोड़कर शहरों की ओर पलायन कर गए। और उनके ऊपर कर्ज़ का भार और भी बढ़ता चला गया।

आज ८ सालों के अंदर स्थिति पलट गई है और कोलार ज़िले में अपने स्थानीय बीज व कृषि प्रक्रियाओं की सुरक्षा के लिए एक आंदोलन शुरू हो गया है। इससे न केवल क्षेत्र की खाद्यान्न सुरक्षा और लोगों की आजीविका सुनिश्चित हुई है बल्कि क्षेत्र की कृषि जैव विविधता को भी बढ़ावा मिला है। मंगम्मा और उनके जैसी अनेक महिलाएं अपने स्थानीय बीजों व उनसे जुड़े पारंपरिक ज्ञान से सशक्त इस आंदोलन में केन्द्रीय भूमिका निभा रही हैं।

स्रोतः अनिता पैलूर, "नेटिव वैराइटीज़ टेक बैक द शो", लीज़ इंडिया, जून २००७ संस्करण ६ अंक २
संपर्कः अनिता पैलूर, कृष्णालय, १ मेन, ४ क्रॉस, नारायणपुरा, धारवाड़ ५८०००८, कर्णाटक, भारत; फोनः ०८३६-२७४८२७७; ईमेलः anitapailoor@gmail.com

केरल

कोल जलक्षेत्र व अलूर गांव

केरल के त्रिचूर और मालापुरम ज़िलों में १३,६३२ हैक्टेयर क्षेत्र में कोल जलक्षेत्र फैला हुआ है। "कोल" नाम का संदर्भ मलयालम भाषा में एक अनोखी कृषि प्रक्रिया से है। कोल केरल के मध्य क्षेत्र का सबसे अधिक धान उत्पादन का क्षेत्र माना जाता है, जहां से इस क्षेत्र की ४० प्रतिशत धान की आवश्यकता की पूर्ति होती है। यहां से १२,००,००० कार्य दिवस के कार्य व प्रति वर्ष रू.१७ करोड़ से अधिक आमदनी प्राप्त होती है।

पक्षी विशेषज्ञों ने इस क्षेत्र में २४१ पक्षी प्रजातियां रिकार्ड की हैं, जिनमें विश्व स्तर पर संकटग्रस्त घोषित की गई प्रजातियां जैसे, स्पौट बिल्ड पैलिकन *(Pelecanus philippensis)*, ओरियैन्टल डारटर *(Anhinga melangaster)*, ब्लैक हैडड आइबिस *(Threskiornis melancephalus)*, पेन्टेड स्टौर्क *(Mycteria leucocephala)*, ब्लैक-बैलिड टर्न *(Sterna acuticauda)*, सिनेरियस वल्चर *(Aegypius monachus)* और ग्रेटर स्पौटेड ईगल *(Aquila clanga)* हैं।

आज कोल जलक्षेत्र व उसके पक्षी व मानव निवासी बदलती भूमि उपयोग प्रणाली के कारण गहरे संकट का सामना कर रहे हैं - इस जगह को अब ऊंची रकम कमाने के लिए पौधारोपण और निर्माण स्थलों में बदले जा रहे हैं, जिसके कारण जलक्षेत्र नष्ट हो रहा है। बढ़ते शिकार के कारण पक्षियों की जनसंख्या में भी कमी हो रही है। एक दशक पहले ८५,००० पक्षियों की गणना आज घटकर केवल ३५,००० रह गई है।

इस जलक्षेत्र को बर्डलाईफ इंटरनैशनल द्वारा 'महत्वपूर्ण पक्षी क्षेत्र' के रूप में मान्यता प्राप्त है और वर्ष २००२ में इसे रामसर कन्वैनशन के अंतर्गत संरक्षित घोषित किया गया था। लेकिन यह मान्यता महत्वपूर्ण होने के बावजूद क्षेत्र को कानूनी रूप से संरक्षित क्षेत्र का दर्ज़ा नहीं देती।

आखिरकार संरक्षणकर्ताओं के लिए उम्मीद की किरण त्रिचूर ज़िले के अलूर गांव से जगी, जो कि कोल के क्षेत्र में ही स्थित है। यहाँ के स्थानीय समुदाय ने संकटग्रस्त प्रजाति ओरियैन्टर डारटर के संरक्षण करने का निर्णय लिया। पिछले कई दशकों से कोल जलक्षेत्र में आने वाले पक्षियों के लिए अलूर गांव एक प्रजनन स्थल रहा है। १९९९ में पहली बार यहां डारटर पक्षियों के ६ जोड़े देखे गये। वर्ष २००३ तक प्रजनन के लिए आए इन जोड़ों की संख्या ३० तक पहुंच गई। और तब से यह संख्या बढ़ती ही जा रही है।

स्थानीय पक्षी प्रेमियों व अलूर ग्राम पंचायत ने निरंतर इस जलक्षेत्र व यहां के पक्षियों के पारिस्थितिकीय महत्व को उजागर किया है। उनके प्रयास सफल हुए। वर्ष २००३ में, जब केरल राज्य विद्युत निगम ने पक्षियों के आवासीय पेड़ों को काटने की योजना बनाई तो गांव के निवासियों ने एकजुट होकर केरल उच्च न्यायालय से 'स्टे आर्डर' प्राप्त किया। गांव में आई.एच.आर.डी. पौलिटैकनिक ने अपने प्रांगण में इन पक्षियों के आवास के लिए १०० वृक्ष लगाए थे। आज इस पौलिटैकनिक के प्रांगण में ही डारटर पक्षियों के ६२ घोंसले हैं। हाल ही में पंचायत ने एक प्रस्ताव पारित किया जिसके अंतर्गत उन्होंने कोल जलक्षेत्र के १०० एकड़ क्षेत्र को सामुदायिक आरक्षित क्षेत्र घोषित किए जाने का आवेदन किया है।

वन्यजीव संरक्षण अधिनियम (१९७२) के अंतर्गत सामुदायिक आरक्षित क्षेत्र होने के नाते, कोल जलक्षेत्र के इस १०० एकड़ क्षेत्र को एक वन्यजीव अभ्यारण्य के सभी फायदे प्राप्त होंगे - इससे भूमि उपयोग के बदलाव व निर्माण कर्ताओं द्वारा इस क्षेत्र का कब्ज़ा करने पर रोक लगेगी। इसके साथ-साथ क्षेत्र का प्रशासन भी स्थानीय लोगों के हाथ में ही रहेगा।

स्रोतः वीनस विनोद उपाध्याय, "वार्निंग बैल्स इन कोल", द हिंदु, अक्तूबर २००७
वीनस विनोद उपाध्याय, "फैदर्ड फ्रैंड्स", द हिंदू, जुलाई २००७
संपर्कः पी.ओ. नमीर, सहायक प्रोफैसर (वन्यजीव) एवं हैड, सैन्टर फार वाईल्डलाईफ स्टडीज़, केरल कृषि विश्वविद्यालय, के.ए.यू. पोस्ट ६८०६५६, त्रिचूर, केरल, भारत ;
फोनः ९१-४८७-२३७००५० और २३७१०१८;
फैक्सः ९१-४८७-२३७१०४०;
ईमेलः nameer.ommer@gmail.com

उड़ीसा

रूगुड़ीपल्ली के अतिथि

उड़ीसा के बोलांगीर ज़िले में एक गांव है रूगुड़ीपल्ली। १९८० के दशक से प्रत्येक साल जून माह में एशियन ओपनबिल स्टौर्क *(Anastomus oscitans)* जिसे क्षेत्रीय भाषा में गेन्डेलिया कहा जाता है, इस गावं में आकर घोंसले बनाते हैं। और यहां ७ महीने तक रहकर अपनी प्रजनन प्रक्रिया को पूरा करते हैं। गांव के लोगों ने पक्षियों के संरक्षण के लिए एक कमिटी का गठन किया है। अगर कोई पक्षियों को क्षति पहुंचाए या पहुंचाते हुए पकड़ा जाए तो उसे रू. १०५१ का जुर्माना कमिटी में जमा करना पड़ता है।

एशियन ओपनबिल स्टौर्क ज़्यादातर *मोलस्क* व ताज़े पानी के घेंगे खाकर आसपास के खेतों को भी फायदा पहुंचाते हैं।

स्रोतः वाई. गिरी राव
संपर्कः वाई. गिरी राव, सीनियर प्रोग्राम ऑफिसर, वसुन्धरा, १५ शहीद नगर, भुवनेश्वर ७५१०१६, उड़ीसा, भारत;
फोनः ०६७४-२५४२०११; मोबाईलः ०९४३७११०९१५;
ईमेलः ygiri.rao@gmail.com

पाकिड़ी पहाड़ियों में मोरों के लिए पानी

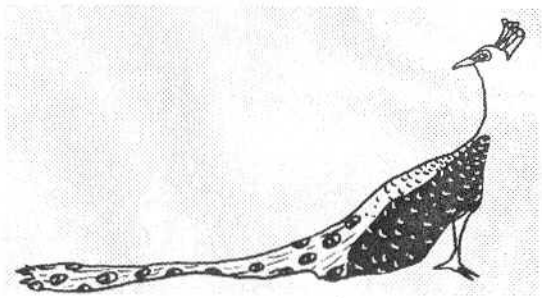

उड़ीसा के गंजम ज़िले में पाकिड़ी पहाड़ियों के निवासी मानते हैं कि मयूर *(Pavo cristatus)* अपने साथ अच्छी किस्मत लेकर आती है और उन्होंने इसके संरक्षण के लिए कई प्रयास किए हैं। असका के पास संरक्षित वन क्षेत्र के नज़दीक के ६ गांवों (सोभाचंदनपुर, केरीकेरीझोले, अम्बुआबाड़ी, भरतपल्ली, छत्रढेपा और शेल्लीगुदा) के निवासियों ने एक मयूर संरक्षण कमिटी का गठन किया है

और वे मयूर के प्रति आम लोगों में जानकारी बढ़ाने का काम कर रहे हैं। इसके साथ ही सारे साल, खासकर गर्मी में प्रत्येक घर अपने आंगन में मिट्टी के बर्तन में पानी रखता है जिससे कि कोई भी मोर या मोरनी प्यासी न रह जाए। ये पक्षी मज़े से आंगन में लोगों के आसपास घूमते हैं क्योंकि उन्हें यहां किसी भी प्रकार की हानि का कोई डर नहीं है।

वन विभाग के कर्मचारी भी मानते हैं कि स्थानीय कमिटी के प्रयासों के कारण मयूर की संख्या में बढ़ौतरी हुई है। और आवास सुधार व संरक्षण के प्रयासों से यह संख्या और भी बढ़ सकती है।

स्रोतः "टर्निंग पीकॉक प्रौटक्शन इनटू अ मास मूवमैंट", इंडिया फर्स्ट ब्यूरो, भूवनेश्वर
संपर्कः वाई. गिरी राव, सीनियर प्रोग्राम ऑफिसर, वसुन्धरा, १५ शहीद नगर, भुवनेश्वर ७५१०१६, उड़ीसा, भारत;
फोनः ०६७४-२५४२०११; मोबाईलः ०९४३७११०९१५;
ईमेलः ygiri.rao@gmail.com

सूखा संभावित क्षेत्र में काले हिरण (ब्लैकबक) का संरक्षण

गंजम जिले के भेतनोई-बालिपदर क्षेत्र के ७० गांव सक्रियता से काले हिरण (ब्लैकबक) *Antelope cervicapra)* का संरक्षण कर रहे हैं। और लोगों को ब्लैकबक के कारण फसलों में भी काफ़ी नुकसान सहना पड़ता है। यह संरक्षण प्रयास १९१८ से चला आ रहा है। पिछले ५० वर्षों में यह प्रयास और भी मज़बूत हुआ है। इसके फलस्वरूप क्षेत्र में आज लगभग ५०० ब्लैकबक हैं। गांव का ६० प्रतिशत क्षेत्र पानी की कमी व ब्लैकबक द्वारा नुकसान के कारण बंजर छोड़ दिया गया है। इसके बावजूद, गांव के निवासी, जो भगवान राम व कृष्ण के अनुयायी हैं, किसी को भी इस जानवर का शिकार नहीं करने देते। उन्होंने सरकार से अनुरोध किया है कि सूखे से राहत के लिए उन्हें सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करवाई जाए।

स्रोतः वाई. गिरी राव
संपर्कः वाई. गिरी राव, सीनियर प्रोग्राम ऑफिसर, वसुन्धरा, १५ शहीद नगर, भुवनेश्वर ७५१०१६, उड़ीसा, भारत;
फोनः ०६७४-२५४२०११; मोबाईलः ०९४३७११०९१५;
ईमेलः ygiri.rao@gmail.com

उड़ीसा में माहसीर संरक्षण

उड़ीसा में महानदी के किनारे बसा हुम्मा गांव अपने पुरातनकाल के शिव मंदिर तथा 'कादो' या माहसीर मछली के प्रति भक्तिभाव के लिए जाना जाता है। उनका मानना है कि माहसीर (*Tor mahanadicus*) भगवान विष्णु का अवतार है। यह प्रजाति प्राकृतिक रूप से केवल इसी क्षेत्र में पाई जाती है। संकट ग्रस्त प्रजाति होने के साथ-साथ इसकी बाज़ार में कीमत भी बहुत ज़्यादा है। मंदिर के पास १.५ कि.मी. नदी का क्षेत्र गांव वालों द्वारा संरक्षित है। मछुआरे इस क्षेत्र में मछली नहीं पकड़ते। इस संरक्षण प्रयास से संबंधित निर्णय लोगों के साथ विचार-विमर्श के बाद मंदिर कमिटी द्वारा लिए जाते हैं। स्थानीय समुदाय के संरक्षण प्रयास के कारण मछली के प्राकृतिक भंडार में भी वृद्धि हुई है। माहसीर मछलियां नदी के पानी को साफ रखने का काम करती हैं। इस क्षेत्र में काफी संख्या में जंगली बिल्लियां *(Felis chaus)*, गीदड़ *(Canis aureus)* और जल-पक्षी भी पाए जाते हैं।

स्रोतः वाई. गिरी राव
संपर्कः वाई. गिरी राव, सीनियर प्रोग्राम ऑफिसर, वसुन्धरा, १५ शहीद नगर, भुवनेश्वर ७५१०१६, उड़ीसा, भारत;
फोनः ०६७४-२५४२०११; मोबाईलः ०९४३७११०९१५;
ईमेलः ygiri.rao@gmail.com

डोंगरिया कोंढ और उनका नियम राजा

उड़िसा की नियमगिरि पहाड़ियों में डोंगरिया कोंढ, कुटिया कोंढ, माझी कोंढ और झरानिया कोंढ जैसे आदिवासी रहते हैं। इन लोगों के लगभग २०० गांव हैं तथा यह लोग पहाड़ियों को नियम राजा के रूप में पूजते हैं। कोंढ समुदाय का नियमगिरि पहाड़ियों के साथ परस्पर लेनदेन का सुंदर रिश्ता है। वे पीढ़ियों से अपने आदिवासी ज्ञान और विश्वास से इस क्षेत्र का संरक्षण करते आए हैं और इन पहाड़ियों व जंगलों ने भी इनकी रोज़मर्रा की ज़रूरतों व आजीविकाओं में सहयोग दिया है। इन आदिवासी समुदायों का पूरा अस्तित्व और ज़िंदगी इन पहाड़ियों से जुड़ी है।

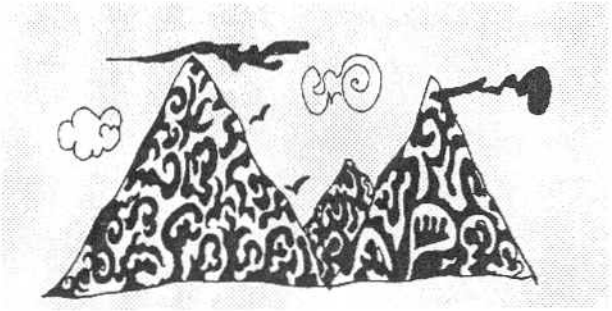

यही कारण है कि नियमगिरी की पहाड़ियों में आज भी कई दुर्लभ वन्यजीव प्रजातियां पाई जाती हैं। इनमें तेंदुआ (*Panthera pardus*), भालू (*Melursus ursinus*), पैंगोलिन (*Manis crassicaudata*), पाम सिवेट (*Paradoxurus hermaphroditus*), विशालकाय गिलहरी (*Ratufa indica*) और सांभर (*Cervus unicolor*) जैसे प्राणी शामिल हैं। यह क्षेत्र हाथियों के आने-जाने का एक महत्वपूर्ण रास्ता है और यहां रॉयल बंगाल टाईगर (*Panthera tigris tigris*) भी रहते हैं। यहाँ ३०० से अधिक वनस्पति प्रजातियां भी पाई जाती हैं, जिनमें से ५० औषधीय मानी जाती हैं। इन पहाड़ियों से कई झरने निकलते हैं (जो ज़्यादातर साल भर पानी से भरे रहते हैं) जो दो बड़ी नदियों के लिए स्रोत का काम करते हैं - वसुंधरा नदी और नागावल्ली नदी। यह नदियां उड़ीसा व आंध्र प्रदेश के बीच बहती हैं और इन राज्यों में लाखों लोगों के लिए पीने के पानी व सिंचाई का साधन है।

इन पहाड़ियों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध 'बॉक्साईट' का खनन करने के लिए वेदांता ऐलुमिना लिमिटेड नामक बहुराष्ट्रीय कंपनी लगातार कोशिश में जुटी हुई है। यह कंपनी पर्यावरण और मानव अधिकार कानूनों का हनन करने के लिए सारे विश्व में जानी जाती है। नियमगिरि पहाड़ियों में खदान होने से भारत के कंपकंपाते वन्यजीवन को अपूर्णीय क्षति पहुंचेगी। साथ ही इस क्षेत्र की विशिष्ट जैवविविधिता नष्ट हो जाएगी तथा झरनों के सूखने से उड़ीसा व आंध्रप्रदेश के लाखों लोग सिंचाई व पीने के पानी के लिए तरसते रह जाएंगे। इसके फलस्वरूप इन आदिवासी समुदायों की ज़िंदगी पर भी अपूर्णीय क्षति होगी और उनके जीने के उत्कृष्ट तरीकों, उनके द्वारा संरक्षित संसाधनों और उससे जुड़े पारंपरिक ज्ञान का विनाश हो जाएगा।

वाईल्डलाईफ सोसायटी ऑफ उड़ीसा के श्री.बिस्वजीत मोहंती, स्थानीय लोगों के प्रतिनिधि श्री.प्रफुल्ल सामंतरा और अकैडमी ऑफ माउन्टेन ऐन्वायरौनिक्स द्वारा सर्वोच्च न्यायालय में दायर किए गए मुकद्दमे में २३ नवम्बर, २००७ को फैसला सुनाया गया कि वेदांता को नियमगिरि में खदान करने की अनुमति नहीं दी जाएगी। लेकिन आश्चर्यजनक बात यह है कि उसी आदेश में स्टरलाईट इंडस्ट्रीज़ ऑफ इंडिया लिमिटेड, एक कंपनी जो वेदांता ऐलुमिना से जुड़ी हुई है और जो उतनी ही बदनाम है को इस क्षेत्र में खदान करने के लिए आमंत्रित किया गया। सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पेश किए गए इस सुनहरे मौके का फायदा उठाते हुए स्टरलाईट इंडस्ट्रीज़ ने तीन दिन में ही एक प्रस्ताव के ज़रिए वेदांता ऐलुमिना के 'बदले में' काम करना स्वीकार कर लिया। स्टरलाईट इंडस्ट्रीज़ द्वारा प्रेषित खदान करने के आवेदन की सुनवाई १५ फरवरी, २००८ को हुई, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने आदेश दिया कि 'केन्द्रीय अधिकृत कमेटी' (सैन्ट्रल एम्पावर्ड कमेटी) जांच करके अपनी टिप्पणी दो सप्ताह के अंदर दे।

अतः संभव है कि नियमगिरि की पहाड़ियां फिर खदान के लिए खोल दी जाएं - और फिलहाल नियमगिरि की किस्मत, उसकी उत्कृष्ट जैवविविधता और वहां के आदिवासियों की ज़िंदगी अधर में लटकी है।

क्या इस बार सर्वोच्च न्यायालय आदिवासियों की पुकार सुन पाएगा? या एक बार फिर इस पुकार को दबा दिया जाएगा? न्यायालय के सामने सवाल यह नहीं था कि 'नियमगिरि में कौन खदान करेगा' - सवाल तो था कि 'नियमगिरि में खदान हो या नहीं?'

स्रोतः

मधु सरीन, "डीकोडिंग द नियमगिरि वर्डिक्ट", डाउन टू अर्थ, जनवरी २००८

संपर्कः मधु सरीन, ४८ सैक्टर ४, चण्डीगढ़ १६०००१, भारत;
ई-मेलः msarin@satyam.net.in

कांची कोहली, "उड़ीसा नियमगिरि ट्राइबल्स अवेट एपैक्स कोर्ट वर्डिक्ट", इंडिया टुगैदर, नवंबर, २००७

संपर्कः कांची कोहली, १३४ टावर १०, सुप्रीम एन्क्लेव, मयूर विहार फेस १, नई दिल्ली ११००९१, भारत;
फोनः ०११-२२७५३७१४;
ई-मेलः kanchikohli@gmail.com

नचिकेता
संपर्कः ई-मेलः epgorissa@gmail.com

अंतर्राष्ट्रीय समाचार

केन्या का पोकोमो समुदाय

केन्या में ग्वानो और न्देरा दो जगह हैं जहाँ पोकोमो समुदाय पीढ़ियों से रहते आए हैं। इसी क्षेत्र में 'रैड कोलोबस' ओर 'क्रैस्टेड मैन्गाबे' प्रजाति के बन्दर भी पाए जाते हैं।

१९७० के दशक में क्षेत्रीय काऊंटी काउंसिल ने ग्वानो और न्देरा को गेम रिज़र्व बनाने व केन्या वाईल्डलाईफ सर्विस (के.व.स.) के हाथों में इस गेम रिज़र्व को सौंप देने का निश्चय किया । दुलर्भ बंदर प्रजातियों के संरक्षण हेतु यह प्रस्ताव पारित किया गया। स्थानीय लोगों को जब इस निर्णय का पता चला तो उन्होंने इसका विरोध किया, परंतु इसके बावजूद सरकार ने यहां गेम रिज़र्व स्थापित कर दिया और स्थानीय लोगों को अपना पुश्तैनी आवास छोड़ने का आदेश दे दिया। इसके कुछ समय बाद तक स्थानीय लोग उसी क्षेत्र में बिना किसी सरकारी हस्तक्षेप के रहते रहे।

१९९१ में गेम रिज़र्व के अधिकारी अपनी बंदूकों के साथ वहां पहुंच गए और लोगों को वहां से यह कहकर निकालने लगे कि वे लोग वहां गैर कानूनी रूप से रह रहे हैं। कई स्थानीय लोगों पर यही जुर्म लगाकर उन्हें बंदी भी बना लिया गया।

१९९३ में, स्थानीय लोगों ने अपने पुश्तैनी आवास में रहने के अधिकार और उनकी अनुमति के बिना वन्यजीव संरक्षण के नाम पर उनके क्षेत्र के हस्तांतरण के खिलाफ न्यायालय में केस दाखिल कर दिया। गांव वालों का कहना था, "यदि कोई दुलर्भ प्रजाति के रैड कोलोबस और क्रैस्टेड मैन्गाबे बन्दरों का संरक्षण कर सकता है तो वह हम हैं के.व.स. नहीं"। लेकिन तब ही के.व.स. को ग्लोबल एन्वायरनमैंट फैसिलिटि के माध्यम से विश्व बैंक से रिज़र्व का विकास करने के लिए ५००० लाख का लोन मिला था। और उन्होंने लोगों को प्रताड़ित करने, धमकियां देने और उन्हें क्षेत्र से बाहर निकालने के काम को और बढ़ा दिया ।

१६ फरवरी, २००७ को अंततः उच्च न्यायालय ने अपना आदेश दिया। इस आदेश के अनुसार 'लाना रिवर प्राईमेट नैशनल रिज़र्व' भंग कर दिया गया। के.व.स. व उसके एजेंटों को इन दोनों जगहों से स्थानीय लोगों को हटाने पर रोक लगा दी गई। स्थानीय लोग अब बिना के.व.स. या उसके एजेंटों के डर से अपने खेतों में फसलें उगा सकते हैं। के.व.स. को इन दोनों स्थानों के वन्यजीवन में हस्तक्षेप करने से भी रोक दिया गया है, क्योंकि आदेश में लिखा था कि दुर्लभ प्रजाति के बंदरों के संरक्षण के बारे में स्थानीय लोगों से ज़्यादा कोई नहीं जानता।

स्रोतः गुम्बाओ की थी, केन्या, "विलेजर्स फ्री टू लिव विद मंकीज़ अगेन", द नेशन, नैरोबी, जून, २००७

नए अंग्रेज़ी प्रकाशन व सी.डी.

फौरेस्ट्स अलाईव!

लेखक : सुनीता राव, सुजाता पद्मनाभन और यशोधरा कुदांजी

कल्पवृक्ष ने 'फौरेस्ट्स अलाईव' नाम की पर्यावरण संबंधी सामग्री सी.डी. में निकाली है। यह अशोका ट्रस्ट फॉर रिसर्च इन ईकोलोजी एंड एन्वायरनमैंट और विवेकानन्द गिरीजन कल्याण केन्द्र के साथ बिलिगिरि रंगास्वामी मंदिर वन्यजीव अभ्यारण्य में एक सहयोगी कार्यक्रम के अंतर्गत तैयार किया गया है।

सी.डी. में इस अभ्यारण्य के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी है। इसमें अभ्यारण्य के अंदर रहने वाले सोलिगा समुदाय से संबंधित जानकारी भी है।

चित्रों व नक्शों से सुसज्जित, सी.डी. में १७५ से अधिक गतिविधियों का वर्णन है। बी.आर. पहाड़ियों से संबंधित शिक्षा के लिए सहायक सामग्री जैसे पोस्टर, फ्लैश कार्ड और कई खेल भी इसमें दिए गए हैं। इस पूरे पैकेज को कक्षा १ से १० के विद्यार्थियों के लिए पर्यावरण शिक्षा कार्यक्रम में उपयोग किया जा सकता है। इस किताब में अध्यापकों, पर्यावरण शिक्षकों, वन विभाग, वन्यजीव पर्यटकों, गैर सरकारी संस्थाओं व संबंधित व्यक्तियों की रुचि हो सकती है। हालांकि विषय-वस्तु बी.आर. पहाड़ियों की है, इसे अन्य क्षेत्रों के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है और इसमें फेरबदल करके और उपयोगी भी बनाया जा सकता है।

और अधिक जानकारी एवं/या आर्डर देने के लिए kvbooks@vsnl.net पर संपर्क करें।

डीप इकौनोमी

लेखक: बिल मैककिबेन
प्रकाशक: टाईम्स बुक्स

डीप इकौनोमी कई निबंधों की एक कड़ी है जो एक परिपूर्ण धारणा में परिणाम लेते हैं। यह धारणा है कि आर्थिक विकास का उद्देश्य है मानव जीवन में गुणात्मक सुधार लाना और यदि मौजूदा आर्थिक विकास का प्रतिरूप यह उद्देश्य पूरा नहीं करता तो इसका पुनः मूल्यांकन करना चाहिए। और ऐसे प्रतिरूप लागू करने चाहिए जो आज की स्थितियों को ध्यान में रखते हुए इस उद्देश्य को पूरा करते हों।

मैक किबेन किसी एक आर्थिक विकास के प्रतिरूप को दूसरे से अच्छा नहीं बताते। बल्कि क्षेत्र-विशिष्ट प्रतिरूप बनाने की बात करते हैं। उनका कहना है कि कोई भी तरीका सही या गलत नहीं होता, केवल किसी स्थिति में कारगर होता है किसी में नहीं।

लेखक का यह भी कहना है कि ज़रूरी नहीं कि 'अधिक' ही 'बेहतर' है। जब औद्योगिकीकरण की शुरूआत हुई थी तब अधिक उत्पादन को ही बेहतर जीवन स्तर से जोड़ा जाता था; लेकिन आज हम उस स्थिति से निकल चुके हैं। लेखक 'अत्यंत एकीकृत' भाव से भरे लोगों की बात करते हैं जिन्हें समुदाय के एहसास की आवश्यकता है। व अन्य विकल्प जैसे प्रदूषण में कमी, शांत जीवन आदि जिनसे जीवन का स्तर बेहतर बनता है न कि अधिक पैसा। उनका कहना है कि हमें ऐसे विकास के प्रतिरूप चाहिए जो हमारी ज़िंदगी अच्छी बनाएं न कि जो केवल अधिक उत्पादकता पर ज़ोर देते हों।

यह किताब अत्यंत रोचक है और हमारी आर्थिक आवश्यकताओं से जुड़े प्रतिरूपों और उनके प्राथमिक उद्देश्यों पर गहराई से नज़र डालती है।

समुदाय व संरक्षण
अंक १, नं.३, जनवरी २००८
संपादक: एरिका तारापोरवाला
परामर्श: नीमा पाठक, व पंकज सेख़सरिया
संपादकीय सहयोग: अनुराधा अर्जुनवाडकर
पुस्तक विश्लेषण: पर्सिस तारापोरवाला
चित्रांकन: मधुवंती अनंतराजन
अनुवाद: निधि अग्रवाल
निर्माण: कल्पवृक्ष, अपार्टमेन्ट ५ श्री दत्तकृपा, ६०८ डेक्कन जिमखाना, पुणे-४११००४
फोन: ६१-२०-२५६७५४५०,
फ़ोन/फ़ैक्स: ६१-२०-२५६५४२३६
ईमेल: kvoutreach@gmail.com
वेबसाइट: www.kalpavriksh.org

आर्थिक सहयोग: मिज़रिओर, जर्मनी

Book Post

निजि वितरण के लिए

प्रकाशित विषयवस्तु

सेवा में,